इन्द्रजीत गुप्त के प्रबन्ध से
हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स, अलीगढ़
में मुद्रित

Library IIAS, Shimla
00024451

जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी

लेखक
शेख़ अब्दुर्रशीद एम. ए., एल-एल. बी.
आचार्य एवं अध्यक्ष इतिहास-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अनुवादक
मोहम्मद उमर एम. ए.
[रिसर्च स्कॉलर]
इतिहास-विभाग

इतिहास विभागीय प्रकाशन
मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ ।

954.023
Ab 32 J
Ab 32 J

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
SIMLA

जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी

[JALALUDDIN FIROZ SHAH KHALJI]

लेखक

प्रोफ़ेसर शेख़ अब्दुर्रशीद एम. ए., एल-एल. बी.

आचार्य एवं अध्यक्ष इतिहास-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अनुवादक

मोहम्मद उमर एम. ए.

[रिसर्च स्कॉलर]

इतिहास-विभाग

इतिहास विभागीय प्रकाशन

मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

DATA ENTERED

CATALOGUED

Publication of theDepartment of History,Muslim University, Aligarh. No 13

General Editor: Prof. S. A. Rashid

73

First Published in 1957

28112

24451
7.5.68

इन्द्रजीत गुप्त के प्रबन्ध से
हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स, अलीगढ़
में मुद्रित।

954.023
A632J

Library IIAS, Shimla

00024451

Published by Prof. S. A. Rashid, Head of the Department of History and Director of Historical Research, Muslim University, Aligarh.

PREPACE

Sultan Jalaluddin Firoz Khalji's reign marks the end of one epoch and the beginning of a new one in Medieval Indian History. A short study of Jalaluddin Firoz was published in the Muslim University Journal in 1931. A Hindi version of this study has been made by Mr. Mohd. Umar and is being published for the first time for the benefit students of Indian History.

Sh. Abdur Rashid,
Professor of History &
Director Historical Research

Muslim University,
Aligarh

भूमिका

६४७ ई० में सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु हुई और असभ्य जातियों, सिथियन, पार्थियनों, गुर्जरों, हूणों तथा कुशनों ने भारतवर्ष में प्रवेश किया, जिससे भारतवर्ष में राज्यविप्लव की स्थिति उत्पन्न हो गई। उन साढ़े तीन शताब्दियों के कलह एवं झगड़ों से पूर्ण युग में, जिसका इतिहास अंधकारग्रस्त है—हम भारत को छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त स्वतन्त्र वंशों द्वारा शासित प्रभुत्वहीन एवं राष्ट्रीय संगठन से रहित देखते हैं। ११वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण ने स्थायी रूप से विदेशी तत्त्व का प्रवेश किया, जिसने कुछ पीढ़ियों के लिये किसी भी प्रकार के सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक संगठन को असंभव कर दिया। आन्तरिक कलह से खंडित और सदैव विदेशी विनाशकारी आक्रमणों के लिये उन्मुक्त भारतवर्ष में मुसलमान सैनिकों ने प्रवेश किया, और वे दूसरे स्थानों के समान ही साम्राज्य निर्माण करने एवं शान्ति स्थापित करने में व्यस्त हो गये। इन असभ्य सैनिकों के साथ-साथ मुसलमान फ़क़ीर, कवि और विद्यार्थी भी आये, जो दरबारी जीवन के दोषों से तथा धन एवं शक्ति के प्रभाव से रहित थे। वे अपने नम्र व्यवहार से भारत के सामाजिक जीवन में घुल मिल गये और उस आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक संगठन के लिये प्रयत्नशील हुए, जिसके बिना राजनीतिक संगठन असंभव है। इन सन्तों और सेवकों ने भारतवासियों के विभिन्न तत्त्वों का एकीकरण करने के लिये सामान्यतः समान यत्न में एक दूसरे से होड़ की। इस समय के इतिहास विधाता अत्यन्त मानवीय—गुण-सम्पन्न एवं यत्नशील व्यक्ति थे, जो उस युग एवं तत्कालीन वातावरण की उपज थे, जिसमें वे रहते थे। वह युग युद्ध, रक्तपात, तीव्र परिवर्त्तन, निर्मम हिंसा, उच्च प्रयत्न एवं राज्यविप्लव का था। यदि हम तत्कालीन व्यक्तियों को उस युग के प्रभाव के बाहर, वर्त्तमानीय दृष्टिकोण से देखें तो उस युग का मानव दानव और वह युग घृणित दृष्टिगत होगा।

देश की इन असाधारण परिस्थितियों और समय की विलक्षणता तथा विशेषताओं के समझने की असफलता के कारण तत्कालीन ऐतिहासिक युग "क्षुद्र एवं अमानवीय" रूप में प्रकट होता है और इतिहासकारों के हाथों में तो यह केवल पापपूर्ण एवं भय तथा घृणा से युक्त रोमांचकारी वृत्तान्त-मात्र मालूम होने लगता है। इस प्रकार भारत का इतिहास यहाँ के राजाओं, धर्मों अथवा निवासियों का इतिहास नहीं रह जाता। अपितु यह एक "व्यावसायिक विनाशयों" की गाथा बन जाता है जिसमें राजा "मुकुटधारी जल्लाद" का रूप धारण कर लेता है। राजसत्ता शस्त्र सज्जित लुटेरों की मण्डली प्रतीत होती है, जिसका कार्य निरन्तर निर्दोष प्रजाजनों का रक्तपात करना, उनके ग्रामों को नष्ट करने और उनकी सम्पत्ति को लूटने के लिये, आक्रमणकारियों को भेजना था। परन्तु बहुधा युद्ध-बन्दियों को सूली पर चढ़ाने की वर्णित कथायें, विद्रोहियों की जीवित खाल खिंचवाने की गाथायें और शत्रुओं पर क्रूर यातनाओं का प्रयोग केवल उनकी हृदयहीन कठोरता का ही प्रमाण नहीं, जिन्होंने उन वेदनाओं और दण्डों का प्रयोग किया था, वरन् यह हमारे पूर्वजों के भी असीम साहस, अदम्य संकल्प और शारीरिक कष्ट के प्रति उपेक्षा का प्रमाण था, क्योंकि किसी प्रकार के दण्ड की अत्यधिकता अथवा वेदना उनको धन और शक्ति की लालसा से विमुख नहीं कर सकती थी और एक विद्रोह दूसरे का अनुसरण उसी प्रकार करता रहा, जिस प्रकार दिवस रात्रि का। इन क्रूर योद्धाओं के साथ-साथ ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती तथा हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया जैसे महापुरुष भी थे जिन्होंने अपने प्रेम, उदारता, निस्वार्थता तथा आत्म-शक्ति, आदर एवं धन के लोभ से मुक्त होने के कारण भारतीयों के हृदय में घर कर लिया था। उन सैनिकों ने भारतीयों के राष्ट्रीय गौरव पर आघात किया और हमारे सन्तों ने उन घावों को भरने का कार्य किया।

× × × × × ×

देहली के सुल्तान हिन्दुस्तान में इस रूप में विदेशी नहीं थे जिस रूप में यहाँ अंग्रेज़ लोग। उन्होंने भारत को अपना घर बना लिया था। उन्हें किसी विदेशी भूमि के प्रति सहानुभूति एवं लालसा नहीं थी। उनका जन्म भारत में हुआ था, वे भारत में ही रहे तथा उनकी मृत्यु भी भारत में हुई। उन्होंने

राजसत्ता हिन्दुओं से अपने प्रबल मनोबल, उच्च सांग्रामिक संगठन, कठोर वास्तविकता जो उनके कार्यों में प्रतिफलित थी और अपने भाग्य पर असीम विश्वास के द्वारा छीनी थी। वह निसर्ग से ही साम्राज्य विनाशक और साम्राज्य निर्माता थे। महमूद ग़ज़नवी ने जिन सेनाओं का भारत के मैदानों में नेतृत्व किया था, वह स्वार्थवश लड़नेवाले सैनिकों का संगठन नहीं था, वरन् उन सैनिकों का समूह था जिनका हृदय, जब वह शस्त्रों की झनकार, अथवा युद्ध-क्षेत्र में बिगुलों की ध्वनि सुनते थे, प्रसन्न होता था। भारतवासियों में विचित्र-रूप से एकता तथा राष्ट्रीयता का अभाव होते हुए भी मुसलमानों की भारतीय विजय एक सरल वस्तु न थी। क्योंकि हिन्दू निराशा-जन्य तीव्र कोप से अपने घरबार की रक्षा के लिये लड़े। पूर्ण विजय प्राप्त करने में एक शताब्दी से भी अधिक समय लग गया, जिससे आक्रमणों की निरन्तरता और अवरोध की दृढ़ता प्रकट होती है। यह वह अदम्य अवरोध था जिसने इन भाग्यशाली सैनिकों में जातीय संगठन बनाये रखा। उनकी सुरक्षा केवल "सजातीयता" के सत्य पर निर्भर थी। उन्होंने अपने उस संगठन तथा तलवार के प्रयोग व भय प्रदर्शन को बनाये रखा, जिससे उन्हें भारत का साम्राज्य प्राप्त हो सका। जो उन्होंने जीता था, उसको उसी रूप से रखना था, जिस रूप में प्राप्त किया था अर्थात् "शस्त्रों की शक्ति द्वारा।" "इस भूमि में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध था, प्रत्येक दूसरे के विरुद्ध तलवार खींचता था और अधिक साहसी एवं भयानक योद्धा बन जाता था।" शीघ्र ही हिन्दुओं ने अनुभव किया कि मुसलमानों का तात्पर्य भारत में राज्य करना था, वह ठहरने के लिये आये थे। सिथियन, पार्थियन और हूणों का आगमन भारत में हुआ और वे भारतीयों में ही लीन हो गये थे, उन्होंने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को खो दिया था, परन्तु वे मुसलमान जो पश्चिमी दर्रों के उस पार से आये थे, भिन्न प्रकृति के थे। उन्होंने इस विस्तृत देश में अपने व्यक्तित्व को विलीन करना अस्वीकार किया। उनको अपनी संस्कृति तथा धर्म का प्रतिपादन करना पड़ा, जिसके लिये उन्हें अत्यन्त अभिमान था। दो सभ्यतायें, दो धर्म एक दूसरे के सम्मुख प्रस्तुत हुए। एक रक्त की सरिता उनको पृथक् करती थी। परन्तु प्रस्तुत आवश्यकता तथा समान भविष्य के विचार से उनको इस सरिता के पार से ही एक दूसरे से

हाथ मिलाना पड़ा। राजपूत लोग विदेशियों के सामने घुटने न टेकने के लिये अति दृढ़ थे, परन्तु अनुशासन के अभाव से तेजस्वी राजसत्ता के विरुद्ध न ठहर सके। धार्मिक उत्साह से प्रवाहित राजपूतों ने राजपूताना तथा अन्य पहाड़ियों की गहनता में शरण ली। उनको तितर-बितर कर दिया गया क्योंकि वह पराधीन होने की अपेक्षा मरण को वरण करना अच्छा समझते थे, तथा विजेताओं के कठिन दमन चक्र के सम्मुख सिर झुकाना उन्हें अभीष्ट नहीं था।

भारतीयों ने अपने आप विदेशी विजय को अवश्यम्भावी समझकर स्वीकार कर लिया और उसके पश्चात् देहली साम्राज्य ने सहकारिता का रूप धारण कर लिया। हिन्दू सैनिक मुसलमान सैनिकों के कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध क्षेत्र में लड़े। हिन्दू दरबारों, महलों एवं दूसरे सरकारी विभागों में मुसलमानों का साथ देने लगे। अपने राज्यों में मुस्लिम नृपति अपनी हिन्दू प्रजा के प्रति पर्याप्त सहनशील थे। यह सहनशीलता सौजन्य के कारण नहीं, वरन् उपेक्षा तथा आवश्यकता के कारण थी। सहनशीलता दुर्बलता का चिह्न है और मुसलमान राजाओं को अपनी प्रजा—जिसके देश को उन्होंने विजय किया, के धार्मिक विचारों को सहन करना ही पड़ा।

विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य अवस्थायें इस स्थिति की उत्तरदायिनी थीं। मुसलमानों की मध्य एशिया की विजय ने भारत को उत्तर की ओर से आनेवाले आक्रमणकारियों के भय से मुक्त किया और विचित्र रूप से भारत-विजय का मार्ग खोल दिया। ११वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत के सीमान्ती पड़ोसी मुसलमान थे, जिन्होंने भारत की मंगोलों के विनाशकारी एवं प्रलयंकर आक्रमणों से रक्षा की, जिन्होंने मध्य एशिया के सुन्दर नगरों का ध्वंस किया था, और मुस्लिम सभ्यता, संस्कृति और विद्या को नष्ट कर दिया था। अपने घरों से निकाले हुए, राजकुमारों, सैनिकों, ऋषियों, तत्वज्ञानियों ने भारत में शरण पाई, जो मंगोलों के आक्रमणों के भय से प्रायः मुक्त था। इस प्रकार १३वीं, १४वीं शताब्दी में मुस्लिम समाज का तत्त्व भारत में पाया जाता था, तथा भारत में मुस्लिम शास्त्रों और सभ्यता की बाद की उन्नति का कारण अधिक मात्रा में वह संकट था जिसने पर्याप्त रूप से बग़दाद की समृद्धि का सर्वनाश किया था। मध्य एशिया का पतन भारत का उत्थान था।

भारत के इतिहास का ६४७ ई० से १००० ई० तक का काल छोटी रियासतों तथा पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का काल था। भारत की भौगोलिक स्थिति एवं इसके जातीय एवं सामाजिक हितों के संघर्षों की विविधता और निगूढ़ आकांक्षाओं की फलोन्मुख सम्भावनाओं ने यहाँ के जातिगत और राजनीतिक कलह को अनिवार्य बना दिया। इसके अतिरिक्त वर्गीय अल्प जन शासित राज्यों की कल्पना और छोटे राज्यों का विचार जो भारत में फल-फूल रहे थे साम्राज्य-सम्बन्धी विचार भारतीय राजनीतिक विचारधारा के मुख्य अंग थे। मुसलमानों ने उस कल्पना को प्रस्तुत किया[१]। मुसलमान लोग स्वभाव और आचरण से साम्राज्य-निर्माता थे। १२०६ ई० के पश्चात् वे मध्य एशिया से व्यावहारिक रूप से पूर्णतया पृथक् कर दिये गये थे, और उन्होंने भारत को अपना घर बना लिया था। उन्होंने सचेत होकर इसकी सीमाओं की रक्षा की, देश का राजनैतिक संगठन किया, शासन-सम्बन्धी अराजकता को दूर किया, तथा देश के साधनों को उन्नत किया एवं कला और विज्ञान के उत्थान को एक नवीन प्रोत्साहन प्रदान किया।

मुट्ठी-भर सैनिक एक साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए, इस साम्राज्य की नींव भय और त्रास पर आधारित थी, जो विजेताओं से प्रोत्साहित थी, परन्तु केवल त्रास ही हिन्दुओं को इतने समय तक अधीनता में नहीं रख सकता था। मुसलमानों का भारतीय शासन सैनिक शासन रहते हुए भी

---

१. साम्राज्य-सम्बन्धी विचारधारा प्राचीन हिन्दू भारतीय राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में विद्यमान् थी। यह मुसलमानों के शासन के प्रति हिन्दुओं की मनोवृत्ति की व्याख्या करती है।

"यदि एक राजा दूसरे से शक्ति में क्षीण है, वह उससे संधि कर लेगा; यदि श्रेष्ठ हो तो युद्ध करेगा; यदि वह अपनी रक्षा के लिये यथेष्ट शक्तिशाली है; परन्तु इतना नहीं कि अपने शत्रु के विनाश के लिये पर्याप्त हो, वह तटस्थ रहेगा"—कौटिल्य।

"उसे सदैव घात करने को तैयार होने दो; उसे अपनी शक्ति को निरन्तर प्रदर्शित करने दो; और उसके भेदों को गुप्त रहने दो; उसको अपने शत्रुओं की दुर्बलता को ढूँढ़ने दो। जो सदैव घात करने को तैयार रहता है उससे सारा संसार त्रस्त रहता है; उसको इसलिये जीवमात्र को शक्ति के प्रयोग से भी अपने अधीन कर लेने दो"—मनु।

जनतंत्र के आधार पर खड़ा था। वह मुसलमानों की विजय के पूर्व चार शताब्दियों के स्वदेशीय शासन से अधिक न्यायकारी था। इसका प्रमाण उन्होंने जान-माल की रक्षा और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के अवसर के रूप में प्रजा को दिया।

गुलाम राजाओं के काल में मुसलमानों की आन्तरिक शासन-संबन्धी दुर्बलता का कारण राज्य की राजतंत्रता थी जिसके पीछे न तो कोई परम्परा ही थी और न देहली के किसी प्राचीन सुल्तान ने दैवी उद्‌गम् का दावा ही किया। वे दैवी अधिकार से शासन नहीं करते थे, वे मनुष्यों की अनुमति से शासन करते थे। वे इसलिये शासन करते थे कि शासन करने की शक्ति रखते थे। उनके शासन करने का अधिकार उनकी तलवारों की शक्ति पर निर्भर था। वे हर अवस्था में या तो सफल सेनापति होते थे या ऐसे व्यक्ति होते थे जो दरबारी षड्यन्त्र या राजभवन की क्रांति के परिणामस्वरूप सिंहासन पर बैठाये गये थे। इसके अतिरिक्त उनका शासनाधिकार सामन्तों के सहयोग और भक्ति पर निर्भर था, जो सदैव अनिच्छा से प्राप्त होते थे। सामन्त बड़े जागीरदार थे, एवं अपनी जागीरों की सीमा के अन्दर फ़ौजदारी या माल-सम्बन्धी अधिकारों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करते थे, और जनता और राजाओं के बीच एक दीवार थे। राज्यसत्ता सेना के हेतु, मालगुज़ारी, और समस्त शिष्ट पुरुषों के साधनों को अपने प्रयोग के लिये ले लेती थी और इसके उपलक्ष में कुछ भी नहीं देती थी। जनता सामन्तों की कठोरता से कराह रही थी, सामन्त राजाओं के दबाव से पीड़ित थे, और जनता और सामन्तों के मान अथवा शक्ति से नरेश भयभीत थे। इस पारस्परिक अविश्वास तथा ईर्ष्या ने जनसाधारण को असंगठित और सामन्तों को शक्तिशाली और राजतंत्र को निर्बल बनाए रखा।

एक स्वेच्छाचारी शासन सरकारी कर्मचारियों के बिना स्थिर नहीं रह सकता और जबकि सारे राज्य की रीति फ़ारस के प्रतिरूप में निर्धारित की गयी थी, कर्मचारिता का उद्‌गम स्वयं दास प्रथा में पाया जाता है, जिसका फ़ारस के छोटे राजवंशों में अस्तित्व था। तुर्की दास सर्वोत्तम होने के कारण बहुधा सेना में भरती किये जाते थे, महत्त्वपूर्ण सरकारी स्थानों की पूर्त्ति के लिये और गुलाम राजाओं के समस्त समय में हम कुख्यात "चालीस दासों को और उनकी

सन्तानों को सुनते हैं जिन्होंने एक तरफ़ राजसत्ता को शक्तिहीन कर दिया और दूसरी तरफ़ लोगों को भयभीत किया। यदाकदा सामन्तों की स्वेच्छाचारी प्रकृति को दबाने के लिये यत्न किये गये, और कुलीन अराजकता और सामन्तों की पारस्परिक जनतंत्र भावना को दबाने के लिये घोर प्रयत्न किया गया क्योंकि सामन्त लोग यदि फूट, दलबन्दी और झगड़ों के कारण विघटित न होते तो अपनी शक्ति को न जाने कब तक अक्षुण्ण रख सकते थे। बलबन प्रथम व्यक्ति था जिसने क्रमानुसार सामन्तों की शक्ति "विष के स्वच्छन्द प्रयोग द्वारा" तथा जल्लाद की तलवार द्वारा नष्ट करना आरम्भ किया, लेकिन उसका लक्ष्य पूर्ण रूप से तुर्की सामन्तशाही को नष्ट करना नहीं था, वरन् उनको एक केन्द्रीय शक्ति के अधीन करना था। जब उसका प्रबल हाथ हट गया तो तुर्कों ने फिर कठपुतली राजा सुभीत सामन्तशाही और त्रस्त जनता का खेल प्रारम्भ कर दिया। किन्तु उसके द्वारा दिये हुए प्रोत्साहन और इस क्रिया द्वारा अग्रसर किये गए विद्रोह की शक्तियों ने तुर्की सामन्तों की शक्ति और सम्मान को बड़ा धक्का पहुँचाया।

१३वीं शताब्दी के भारत के प्रथम उल्लेखनीय व्यक्ति बलबन की मृत्यु शासकीय कलह तथा जनसाधारण के चरित्र के शिथिल होने की चेतावनी थी। उसका उत्तराधिकारी मईज़ुद्दीन हुआ, जो बुग़राख़ाँ का पुत्र था। उसका पालन-पोषण बलबन के दरबार में, कठोर धार्मिक अनुशासन में हुआ जिसमें उसे विषय सुखों और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित रखा गया। जब वह १८ वर्ष की आयु में राजा हुआ तो वह शराब अथवा शिकार में लीन हो गया, और सरकारी कर्मचारियों की घृणा और निराशा का पात्र हुआ। उसने अपनी सरकार का केन्द्रस्थल "नवीन नगर" किलूगोरी में, जो जमुना के तट पर था, बदल दिया, जहाँ उसने एक सुन्दर राजभवन बनवाया था। राज्य के कार्यों के प्रति प्रमादग्रस्त, यौवन और सुरा के मद से मस्त वह दिल्ली के कोतवाल मलिकुलउमरा फ़ख़रुद्दीन के जामाता, निज़ामुद्दीन, के विनाशकारी प्रभाव में पड़ गया। मलिक निज़ामुद्दीन एक प्रसन्न सहचर और निपुण राजनीतिज्ञ था, परन्तु अत्यन्त तृष्णालु और कुटिल था। राजा के अपने प्रति स्नेह का लाभ उठाते हुए और भोग-विलास के लिये अपनी विचारहीन ललक के कारण

निज़ामुद्दीन ने सर्व प्रथम अपने हाथों को कैख़ुसरो का बध कराने से मलीन किया जो अपनी मुल्तान की जागीर से बुलाया गया था। कैख़ुसरो की हत्या के कारण नगर में भय की एक लहर दौड़ गई, परन्तु किसी को निज़ामुद्दीन को इसके लिये दोषी ठहराने का साहस न हुआ। अभीष्ठ राजसत्ता की प्राप्ति में इस विघ्न को हटाने के पश्चात् उसने नियमित विधि से उन सामन्तों के नाश का कार्य आरम्भ किया जो बलबनी-दरबार में उन्नतिशील थे। प्रधान मंत्री, ख़्वाजा ख़ातिर, का अपमान किया गया और उसे गदहे पर बिठाकर सारे नगर में घुमाया गया। मुग़ल सामन्तों को गिरफ़्तार किया गया और उनका बध किया गया। एक सार्वजनिक अरक्षा की भावना सामन्तों में फैल गई। सुल्तान के पिता बुग़राख़ाँ ने लखनौती में नासिरुद्दीन की पदवी ग्रहण की थी मुद्रा जारी किये और "ख़ुतुबा" अपने नाम पर पढ़वाया था। जब उसे देहली की स्थिति का ज्ञान हुआ और यह ज्ञात हुआ कि किस रूप से उसका पुत्र विनाश की ओर अग्रसर हो रहा था तो उसने उससे मिलने और उसके सलाहकार मित्र निज़ामुद्दीन की कूटनीति से सूचित करने का निश्चय किया। दोनों राजाओं की भेंट घाघरा नदी के तट पर हुई। नम्र व्यवहार के आदान-प्रदान के पश्चात् पिता ने पुत्र को चेतावनी दी कि वह राज्यकार्यों में अधिक सचेत हो और सांसारिक सुखों में कम लीन रहे। इस भेंट के पश्चात् कैक़ुबाद राजधानी में वापस आया। उसने निज़ामुद्दीन को मुल्तान जाने तथा राज्यपाल के पद को, जो कैख़ुसरो की मृत्यु के पश्चात् रिक्त हो गया था, ग्रहण करने की आज्ञा दी। निज़ामुद्दीन ने यह अनुभव करते हुए कि उसने राजा का विश्वास खो दिया था, जाने में हिचकिचाहट की लेकिन कुछ तुर्की जागीरदारों ने इसका अन्त विष द्वारा कर दिया। मलिक फ़ीरोज़, जो समाना में नायब और दरबार में सरजानदार था, बुलाया गया। उसे शाइस्ताख़ाँ की पदवी और बदायूँ की जागीर प्रदान की गई। उसे अर्ज़-ए-ममालिक भी बनाया गया।

इसके पश्चात् शीघ्र ही कैक़ुबाद अधिक शिकार अथवा शराब के कारण लक़वे का शिकार हुआ, और जागीरदारों ने उसके जीवन से निराश होकर उसके अल्पवयस्क पुत्र को सुलतान शमशुद्दीन की पदवी से गद्दी पर बिठाया। तुर्की जागीरदारों ने जो दरबार और सेना में विदेशी सामन्तों के

प्रभाव के कारण उनसे—विशेषतः खिलजी अमीरों से ईर्ष्या रखते थे गुप्त हत्या द्वारा उन्हें अपने मार्ग से हटाने का षड्यन्त्र रचा। ऐसे जागीरदारों की एक सूची तैयार की गई, जिसमें प्रारम्भ का नाम खिलजी[1] अमीरों और मलिकों के

---

१. खिलजियों का उद्गम अन्धकारपूर्ण है। वे जन्म से तुर्क थे। अज्ञात समय में भारत तथा सीस्तान के अन्तर्गत वर्त्तमान अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिणीय भाग में बस गये थे। ११वीं, १२वीं, १३वीं शताब्दियों में वे एक स्वतन्त्र राजनैतिक दल के रूप में दिखाई नहीं देते, परन्तु खिलजी सैनिकों के दल स्वार्थ सिद्धि के लिये तुर्की राजाओं की सेना में सेवा करते थे। खिलजी लोग महमूदग़ज़नवी की ध्वजा के नीचे उपस्थित थे जब उसने बलख (उत्बी) को जीता था। खिलजी मंगोलों के विरुद्ध जलालुद्दीन ख्वारिज़्मशाह के साथ युद्ध में लड़े। खिलजियों का यश उनकी सैनिक वीरता और उत्साह में था, और उनमें से कुछ स्वतन्त्र वंशीय राज्य स्थापित करने में सफल हुए। भारत में, १३वीं शताब्दी में, वे तुर्क नहीं समझे जाते थे, परन्तु गुलाम वंश के राज्यों के विलक्षण मुस्लिम सामन्तों के रूप में पहचाने जाते थे। इसीलिये १२९० ई० में देहली के निवासियों को खिलजी शासन की अधीनता स्वीकार करने से अत्यन्त घृणा थी।

मेजर रेवर्टी एवं एलफिंस्टन के मतानुसार खिलजी "एक जाति थे, जो तुर्क थे, परन्तु बहुत समय तक अफ़ग़ानिस्तान में रहने के कारण प्रथम हिरात के आस-पास तत्पश्चात् पूर्व की ओर वे स्थानीय जनता में एकीभूत हो गये इस कारण उन्हें तुर्कों से अधिक अफ़ग़ान समझा जाने लगा।" बर्नी जलालुद्दीन के सम्बन्ध में कहता है "वह एक ऐसी जाति से आया था जो तुर्कों से भिन्न थी, तुर्क उसे अपने मित्रों की संख्या में सम्मिलित नहीं करते थे और कैकुबाद की मृत्यु के पश्चात् तुर्कों के शासन का अन्त हुआ।"

निज़ामुद्दीन, 'तबक़ाते-अकबरी' के सम्पादक के कथनानुसार 'खलज वर्ग', चंगेज़खाँ के जामाता खल्ज खाँ, की सन्तानों में से है, जो ग़ोर अथवा ग़ुर्जिस्तान के पहाड़ी देश में, चंगेज़खाँ की सिन्ध नदी से वापसी के पश्चात् बस गया था। 'सल्जूकनामा' के लेखक के अनुसार "नूह के पुत्र, जाफ़र, के पुत्र, तुर्क, के ११ सन्तानें थीं, उनमें से एक को खुलिच कहते थे, और उसी के वंशज खिलिजिज़ अथवा, खिलचीज़ कहे गये।

फ़रिश्ता इस कथन को अत्यधिक सम्मान्य मानता है, क्योंकि खिलजियों की चर्चा बहुधा ग़ज़नी के राजाओं के इतिहासों में, मुख्यतया सुबुक्तगीन और सुल्तान महमूद के शासन-काल में मिलती है और यह निश्चय है कि चंगेज़खाँ के समय के पूर्व उनका अस्तित्व था।

अफ़ग़ानिस्तान के गिलज़ीज़, जिनका उद्गम निस्सन्देह तुर्की है खिलज़ीज़ के रूप में जाने जाते हैं। मेजर रेवर्टी ने इस कथन का घोर विरोध किया, परन्तु, जैसा सर वैलेज़ली हेग ने संकेत किया है "यदि गिल्ज़ायीज़ शब्द खिलजी नहीं हुआ, तो यह कहना कठिन है कि खिलजी का क्या बन गया है।

नायक मलिक फ़ीरोज़ का था, जो सेना में अपनी वीरता और सैनिक योग्यता के कारण अत्यन्त प्रभावशाली था। षड्यन्त्र का ज्ञान होते ही मलिक फ़ीरोज़ सचेत होगया। उसने शीघ्र ही बहापुर आकर अपने सहायकों को एकत्र किया, और षड्यंत्रकारियों को पराजित और क़त्ल किया। उसके पुत्र निर्भीकता से नगर में घुस गये और शिशु सुल्तान एवं देहली के कोतवाल के पुत्रों को पकड़ लाने में सफल हुए। देहली के निवासियों ने उनका अनुसरण किया, परन्तु अपने पुत्रों की प्राणहानि के भय से कोतवाल ने उनको पीछे रखा और जलालुद्दीन फ़ीरोज़ पूर्णरूप से समस्त राज्य का प्रधान अध्यक्ष बन गया। कैक़ुबाद की हत्या उसकी शय्या पर १२८६ ई० (६८८ हिज०) में हुई और उसके शरीर को यमुना में फेंक दिया गया। इस प्रकार देहली का राज्य ख़िलजियों के हाथ में पहुँच गया।

यह वंश-परिवर्तन ख़िलजी क्रान्ति का सूत्रपात था, जिसने शक्ति-प्रयोक्ता, अनियमित, निर्दय शासन का अन्त किया। वृद्ध सुल्तान का सम स्वभाव और वृद्धावस्था में मुसलमानों के रक्तपात से विमुखता तथा ख़िलजियों की अधीनता को अपमान और असह्य समझनेवाले दिल्लीवासियों की भावुकता-पूर्ण घृणा परिवर्तन के तात्कालिक प्रभाव को दूर करने में सहायक सिद्ध हुए। कुछ तुर्की जागीरदारों की पुनर्नियुक्ति करनी पड़ी, इस राजनैतिक नाटक के अन्तिम अंक को अलाउद्दीन ने पूरा किया जिसने पुराने सत्तारूढ़ शिष्टजनों का समूल नाश कर दिया। केवल तीन शिष्ट जनों को छोड़ा गया, उनमें से एक ख़िलजी, दूसरा परिवर्तित धर्मी राजपूत और तीसरा एक विलक्षण मुसलमान था। इस प्रकार ख़िलजी-क्रान्ति भारतीय मुसलमानों की विदेशियों के विरुद्ध एक क्रान्ति हो जाती है। भारतीय मुसलमानों को इससे पहले वास्तव में कोई अधिकार प्राप्त न थे; इस क्रान्ति ने उनके अधिकार को स्वीकार करा दिया। इस परिवर्तन का इतना ही महत्वपूर्ण दूसरा पहलू भी है। इस समय तक साम्राज्य के समस्त नगरों में देहली प्रधान नगर था। हिन्दुस्तान का साम्राज्य देहली का साम्राज्य कहलाता था। इसके निवासियों ने जलालउद्दीन के नगर में प्रवेश करने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की और वह केवल एक बार अपने शासनकाल में वहाँ गया और केवल इस शर्त पर कि प्रातःकाल जावेगा और संध्या को

लौट आवेगा। अलाउद्दीन के राज्याभिषेक ने राजधानी के विरुद्ध प्रान्तीय विद्रोहों का प्रदर्शन किया आर उनके निवासियों के प्रत्यक्ष कार्यों को प्रदर्शित किया।

खिलजी साम्राज्यवाद की स्थापना साहित्य एवं कला की उन्नति के लिये अत्यन्त अनुकूल थी। दरबार में साहित्यिक वातावरण पैदा किया गया, जिससे वह एशिया के समस्त राज्य दरबारों में सबसे अधिक परिष्कृत और संस्कृत दरबार हो गया। अलाउद्दीन के आधिपत्य में धर्म निरपेक्ष राज्य का श्रीगणेश हुआ जिसको यूरोप ने शताब्दियों के रक्तपात के पश्चात् प्राप्त किया।

अल् सुल्तान-अल् हातिम जलालुद्दीनियाँ
अबुल मुज़फ़्फ़र फ़ीरोज़शाह
जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह ख़िलजी

जलालुद्दीन का राज्याभिषेक ६८६ हिजरी में हुआ[1]। यह एक रक्तपात की क्रान्ति थी, जिससे कि भारत की राजसत्ता तुर्कों से ख़िलजियों को प्राप्त हुई। परन्तु देहली निवासी अपने पूर्व स्वामियों के प्रति पुरानी राजभक्ति होने के कारण प्रारम्भ में नये वंश के प्रति घृणा का भाव रखते रहे। वे ख़िलजियों[2] को नीच और उनकी अधीनता स्वीकार करना अपने गौरव के प्रतिकूल समझते थे। जियाउद्दीन बर्नी लिखता है "चूँकि देहली के निवासी ८० वर्ष तक तुर्कों के शासन में समृद्ध रहे थे अतएव ख़िलजियों का शासन उनको असहनीय प्रतीत होता था। जब उन्होंने सुल्तान का सार्वजनिक दरबार देखा, वे आश्चर्य से प्रसन्न हुए। यह उनके लिये आश्चर्यजनक था कि ख़िलजी तुर्कों के सिंहासन को ग्रहण करे, अथवा तुर्की वंश के अतिरिक्त कोई दूसरा वंश इस भूमि पर शासन करे।" सार्वजनिक भावना का ध्यान रखकर जलालुद्दीन ने कैक़ुबाद[3] के पुत्र को कुछ समय के लिये सिंहासन पर बिठाया और स्वयं राजा के संरक्षक के रूप में शासन करने लगा। मलिक छज्जू

---

१. जियाउद्दीन के कथनानुसार जलालुद्दीन का राज्याभिषेक ६८८ हिज० में हुआ था। निज़ामुद्दीन इस तिथि को स्वीकार करता है परन्तु, बदायूनी, तथा तारीख़े-मुबारकशाही के लेखक ने अमीर खुसरो की तिथि ६८६ हिज० को स्वीकार किया है—

'मिफ़्ताह-उल-फ़ुतूह'

२. पृष्ठ के नीचे की टिप्पणी को देखो (१) पृष्ठ ६।

३. शमसुद्दीन तुर्की सामन्तों द्वारा सुल्तान घोषित किया गया था, जब उसका पिता, कैक़ुबाद किलगौरी में बीमार था और मर रहा था। जलालुद्दीन के पुत्र शमसुद्दीन को पकड़ ले गये और उन्होंने उसे बन्दी रखा था। ख़िलजियों ने उसकी हत्या की थी।

ख़िश्लूख़ाँ[१] को दबाव से अपनी कड़ा की जागीर को जाने के लिये बाध्य किया गया और इस प्रकार असन्तोष के केन्द्र से दूर कर दिया था, जहाँ पर उसकी उपस्थिति बलबन के वंश की सहानुभूति में विपरीत क्रान्ति के लिये संगठित होने का केन्द्र बन सकती थी। इसके अतिरिक्त सुरक्षा के लिये सुल्तान ने राजभवन और राजधानी को किलगौरी[२] में नियत किया। मौइज़ी भवन की मरम्मत कराई गई और सामग्रियों से सुशोभित किया गया। उपवन लगवाए और रास्ते बनवाये। अपने दरबार के अमीरों और जागीरदारों को वहाँ पर अपने-अपने भवन के बनवाने की आज्ञा दी गई। मस्जिद और बाज़ार बनवाये और थोड़े से समय में एक नया नगर तैयार हो गया जिसने "नवीन नगर" का नाम पाया। पत्थरों का एक गगनचुम्बी और बड़ी-बड़ी मीनारों का दुर्ग निर्माण किया[३]।

एक वर्ष के समय में जलालुद्दीन जनता की भावनाओं को सिंहासन के लिये अपने अधिकार की पुष्टि में लाने में सफल हुआ। उसकी सरकार ने दृढ़ता प्राप्त की। प्रान्तों को उसने अपने सहायकों के हाथों में सौंपा और पुरस्कार की आशा या दण्ड के भय ने शत्रुओं को सांत्वना दी। न्याय, उदारता,

---

१. अलाउद्दीन ख़ुश्लूख़ां प्रायः मलिक छज्जू के नाम से प्रसिद्ध है, बलबन और अमीर हबीब का भतीजा था। मलिक छज्जू विद्या का आश्रयदाता था और शिकार खेलने, तीर चलाने तथा गेंद खेलने में अधिक कुशल था। अमीर ख़ुसरो के कई क़सीदे उसको सम्बोधित करके लिखे गये हैं और उसका जीवन-वृत्तान्त संक्षेप में बर्नी ने अपनी 'तारीख़े-फ़िरोज़ी' में दिया है।

२. किलगौरी एक महत्त्वपूर्ण स्थान सुल्तान नासिरुद्दीन बलबन के समय में भी था अथवा यहाँ पर बलबन ने हलाकूख़ाँ के राजदूत का सत्कार किया था और उस समय में भी "शहरे-नव" (नवीन नगर) कहलाता था। और यह कहना असत्य है कि कैक़ुबाद ने इसकी नींव रखी थी। कैक़ुबाद ने यहाँ पर एक भवन बनवाया था और शानदार बाग़ लगवाया तथा तत्पश्चात् जलालुद्दीन ने उसको देहली निवासियों के विरोध के कारण अपनी राजधानी बनाया था। देखो, ईलियट तथा डाऊसन, भाग २, पृ० ३८२, अमीर ख़ुसरो, क़िरानुस्सादैन, कार स्टेफ़न "देहली के अवशेष, पुराणी शख एवं स्मरणार्थ"

३. अमीर ख़ुसरो ने इस दुर्ग की प्रशंसा में कहा है, "राजा ने एक क़िला नवीन नगर में बनवाया है जोकि अपने पाषाणी-मीनारों को चन्द्रमा तक उठाये है।

धीरता एवं पवित्रता ने उसके शत्रुओं की ओर से डर शान्त कर दिया और उसके मित्रों की राजभक्ति को दृढ़ बना दिया। उसके पश्चात् पदों और जागीरों का वितरण आरम्भ हुआ। इसके ज्येष्ठ पुत्र ने 'ख़ानख़ाना' की पदवी प्राप्त की, द्वितीय पुत्र ने 'अर्कअलीख़ाँ', और तृतीय पुत्र ने 'कद्रख़ाँ' की पदवी ग्रहण की। उनकी जीविका के लिये हरएक को एक प्रान्त प्रदान किया गया। सुल्तान का भ्राता अर्ज[1] ममालिक के पद के साथ यगरिशख़ाँ हुआ। अलाउद्दीन और इल्मासबेग (दोनों सुल्तान के भतीजे और जमाई) क्रमानुसार अमीर तुज़्क अथवा अखौरबेग (घोड़ों के स्वामी) हुए। दूसरे कुलीन महानुभावों ने योग्य जागीरें और पदवियाँ पाईं। दीवाने विज़ारत ख्वाजा ख़ातिर को सौंपी गईं, और मलिकुलउमरा फ़ख़रुद्दीन जोकि वर्षों से देहली का कोतवाल रहा था, उसको उसी पद पर दृढ़ किया गया। अब संतोष और शान्ति छोटे और बड़े लोगों में दिखायी देने लगी।

अपनी स्थिति को सुरक्षित कर चुकने पर जलालुद्दीन ने देहली नगर को "अति वैभव प्रदर्शन और चमकदार अलंकृत रूप से अपनी सेना द्वारा" जाने का साहस किया। समस्त घटना नाटक के समान थी। बर्नी का स्पष्ट वर्णन जो सुल्तान के चरित्र और दुर्बलता की झलक दिखाता है, जिस पर राजसत्ता का बोझ अनुचित दबाव पड़ता प्रतीत होता है, अध्ययन से विदित होगा।

"जब सरकार और राजसभा मलिकों, अमीरों और दूसरे महानुभावों से सुशोभित हो गई तब जलालुद्दीन ने राजसत्ता-कर्मचारियों, सहायकों, ख़िलजी अमीरों, नेताओं और सेना के साथ देहली में प्रवेश किया। दौलतख़ाँ[2] पर वह घोड़े से उतरा और कृतज्ञता में "दो रक़ात नमाज़ पढ़ी"। उसके पश्चात् वह राजभवन में गया और पूर्व सुल्तानों के सिंहासन पर बैठा और जागीरदारों को अपने पास बुलाया। उसने मन्द स्वर में कहा "मुझे ईश्वर का अत्यधिक कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि मैं आज सम्राट् के रूप में उस सिंहासन पर बैठा हूँ, जिसके

१. अर्ज़-ए-ममालिक का पद मुग़लों के मीरबख़शी के पद के अनुरूप था—सुजानराय की "खुलासतुत तवारीख़" देखो।

२. सम्भवतः दुर्ग स्वेत "कस्रे सफ़ेद", जोकि क़ुतुबुद्दीन एबक ने राय पिथौरा के दुर्ग में बनवाया था।

सामने बहुधा मैंने अपना मस्तक इसी जमीन पर टेका था, जबकि मेरे मित्र, उदार साथी और समान पुरुष जिनके साथ समस्त जीवन भाईचारे के साथ रहा हूँ, हाथ बाँधे मेरे समक्ष खड़े हों।" इसके पश्चात् वह दौलतखाँ में अपने घोड़े पर सवार हुआ और रूबी महल (खुश्केलाल)[1] में आया जहाँ वह अपनी पुरानी रीति के अनुसार द्वार पर उतरा। "यह राजमहल बादशाह सलामत का है" नायब बर्बक (उत्सवों के अधीक्षक) जलाली सरकार के एक स्तम्भ और आश्चर्यजनक मानसिक शक्तिवाले व्यक्ति अहमदचप[2] ने कहा "आप द्वार पर क्यों उतरते हैं"। अहमद को सुल्तान ने उत्तर दिया "यदि यह राजभवन मेरे पिता या पितामह ने बनवाया होता अथवा उनकी सम्पत्ति होती, तब यह मुझसे सम्बन्धित होता परन्तु यह सुल्तान बलबन का राजभवन है। उसने इसे उस समय बनवाया था जबकि वह एक खान था, यह सम्पत्ति उसके पुत्र और नाती की है। मैं इस पर शक्ति द्वारा अधिकार जमा रहा हूँ। "राज्य किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं"–अहमदचप ने उत्तर दिया। सुल्तान ने कहा, "मैं सब कुछ जानता हूँ जो तुम मुझसे कहते हो, परन्तु तुम्हारा तात्पर्य क्या

---

१. खुश्केलाल को बलबन ने ६५४ हिज० में बनवाया था, जैसाकि सैयद अहमदखाँ ने अपनी रचित 'आसारूस सनादीद' में अनुमानित किया है। इस पुस्तक के लेखक के मतानुसार खुश्केलाल हजरत निजामुद्दीन औलिया की समाधि के पास था। कार स्टेफन इस विचार से असहमत है और उसका मत है कि कथित राजभवन रायपिथौरा के नगर के भीतर स्थित था।

२. अहमदचप, या अहमद हबीब फ़रिश्ता के अनुसार, जलालुद्दीन की बहन का लड़का था। वह अधिक चतुर और स्पष्टवादी जलाली अमीरों में से था। सम्राट् उसका मान करता था, यह इस यथार्थता से स्पष्ट होता था कि वह बार-बार सुल्तान से उसकी मूर्खतापूर्ण नम्रता और अपात्रों के प्रति उदारता का विरोध करता था। फ़रिश्ता उसके निर्णय की सूक्ष्म बुद्धि और उसके विचारों की सत्यता की प्रशंसा करता है। जब जलालुद्दीन नावों द्वारा अपनी मृत्यु को गले लगाने "कड़ा" गया, अहमद हबीब को आज्ञा दी कि राजकीय सेना को भूमि द्वारा लाये, परन्तु फ़रिश्ता खेद प्रकट करता है कि उसके कार्य उतने बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं थे जितने उसके शब्द। जलालुद्दीन की हत्या के पश्चात् वह सेना को देहली लाने में सफल हुआ और भागे हुए राज्य-परिवार के साथ मुल्तान चला गया। जब वह स्थान अलाउद्दीन के पदाधिकारियों के हाथ लगा, तो उसको अन्धा कर दिया गया और हांसी के दुर्ग में बन्दी रखा गया। बाद में वह मार डाला गया।

है ? क्या मैं क्षणिक लाभ के लिये अपने धर्म-विश्वास का उल्लंघन करूँ और शरीयत के विपरीत दूसरी बातों को स्वीकार करूँ ? तुम जानते हो कि मेरे पूर्वजों में से कोई भी कभी राजा नहीं रहा। राजसत्ता का गौरव मुझे सम्पत्ति द्वारा नहीं मिला है। अभी-अभी मेरे मस्तिष्क में यह विचार उठा कि सुल्तान बलबन सार्वजनिक दरबार में अपने सिंहासन पर बैठा है और मैं उसके समक्ष जा रहा हूँ। मैंने बहुधा उस राजा की सेवा इसी राजभवन में की है जिसके भय अथवा ऐश्वर्य से, जो अभी तक मुझ से दूर नहीं हुआ, मेरा हृदय काँपता है।"

इस प्रकार अहमदचप को धर्मोपदेश देते हुए जलालुद्दीन लालमहल तक गया। 'मलिकों के भवन' में पहुँचकर उसने अपना मुख अपने रूमाल से छिपा लिया और फूट-फूट कर रोया। तत्पश्चात् उसने मलिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "प्रभुता एक छल और इन्द्रजाल है, बाहर से चित्रित और भूषित परन्तु अन्दर से खोखली। मैंने इस भयानक परिस्थिति में ऐतमारकच्छन्न और ऐतमारसुरखा[1] के वंशों को नष्ट कर दिया, इस भय से कि वे मुझे मार डालेंगे। मैंने अपना जीवन मलिक और अमीर की तरह व्यतीत किया और सदैव आनन्द और सुख से रहा हूँ। मैं अब एक वृद्ध व्यक्ति हूँ। मैं स्मरण करता हूँ कि बलबन किस प्रकार का सम्राट् था। खान और सम्राट् के रूप में उसने ४० वर्ष तक देश का शासन किया। उसके पुत्र सभ्य थे, भतीजे प्रसिद्ध थे। उसके आतंक, प्रभुत्व और शान के कारण ही उसके सहायक और सरकारी कर्मचारी अपनी जड़ पूर्णतया जमा सके और उसका शत्रु या विरोधी देश में शेष न रहा। बलबन की मृत्यु और उसके पौत्र के राज्याभिषेक को तीन वर्ष से अधिक नहीं व्यतीत हुए, तथापि मैं विद्यमान जनसमूह में उसके तीन या चार कर्मचारियों के अतिरिक्त उसके शासन के किसी अन्य कर्मचारी को नहीं देखता हूँ। मैं स्वयं बलबन का नौकर था। इतने अधिक स्वामिभक्त अमीरों और मलिकों को अपने चारों ओर संगठित करना अथवा उनकी सहायता अपनी सरकार की दृढ़ता के लिये प्राप्त करना, मेरे लिये सम्भव कैसे होगा। एक ऐसे भयंकर, कार्य-कुशल और अनुभवी

१. दो तुर्की सामन्त जिन्होंने खिलजी अमीरों के समूल नाश का षड्यन्त्र रचा था।

व्यक्ति के हाथों में भी जब राज्य सदैव नहीं रहा, और न नियमानुसार उसके पुत्रों को उसके पश्चात् मिला, वह फिर मेरे हाथों में कैसे रहेगा या पैतृक धन के समान मेरे पुत्रों को कैसे पहुँचेगा...जो महान् सत्ता को ग्रहण करता है वह अपने आपको और अपने सब सम्बन्धियों को आघात से विनाश की ओर ले जाता है।' सुल्तान रो पड़ा और ऐसा ही बुद्धिमान् और वृद्ध कर्मचारियों ने किया, जिनके हृदय को उसके करुण धर्मोपदेश ने स्पर्श किया था। परन्तु नवयुवक कर्मचारियों को सुल्तान का भाषण मूर्खतापूर्ण तथा राजनीति से दूर की बात प्रतीत हुआ। वे कहते थे—"सरकार भय, राज्य और प्रभुत्व पर निर्भर है; जिसमें 'मैं सब कुछ हूँ, कोई दूसरा नहीं' का दावा होता है। इस नियम का पालन करना इस व्यक्ति का कार्य नहीं है। यह तो आरम्भ ही में अपने सरकारी कार्यों को तिलांजलि देने और अपने वंश की अवनति करने के सम्बन्ध में सोच रहा है। दण्ड और अधिकार ऐसी चीज़ें हैं जिनमें रक्त की नदियाँ बहानी पड़ती हैं, वह इसके वश का नहीं है।" वास्तव में सुल्तान सैनिकों की दृष्टि में गिर गया, परन्तु उसने बहुतों का हृदय अपनी उदारता, नम्रता और मनुष्यता द्वारा जीत लिया था। नवीन नगर में आने के पश्चात्, उसकी दो कन्याओं के विवाह, उसके दोनों भतीजों अलाउद्दीन और अल्मास बेग[1] के साथ करने के उपलक्ष्य में एक विशाल शानदार भोज दिया गया।"

सुल्तान की इस अराजनैतिक, आत्म-अधोगति ने शीघ्र ही फल दिखाया। मलिक छज्जू (बलबन का भतीजा) जिसको कड़ा में राज्यपाल नियुक्त किया गया था ने मुग़ीसुद्दीन की पदवी धारण करके समस्त राजसत्ता को हस्तगत किया, अपने सिर पर श्वेत राजछत्र[2] लगाया, अपने नाम की मुद्रा जारी की और राजधानी की ओर अग्रसर हुआ। सरजानदार एवं अवध के राज्यपाल [एक कर्मचारी और सुल्तान बलबन का आदमी जिसे स्वतन्त्र कर दिया गया था और जिसने सद्य: हातिमख़ाँ की पदवी पाई थी] और दूसरे बलबनी सामन्तों ने जिनकी जागीरें उस भाग में थीं और बहुत से भारतीय सैनिकों ने

---

१. अलाउद्दीन की पत्नी अति सुन्दर और अनेक गुणसम्पन्न राजकुमारी थी। परन्तु वह अत्यन्त अभिमानी तथा अहंकारी प्रतीत होती थी।

२. जलालुद्दीन ने राजछत्र का रंग लाल से श्वेत करा दिया था।

इस साहस-कार्य में भाग लिया। राज्यद्रोहियों ने तुर्कों के जातीय गौरव को उद्दीप्त किया, जिनको उन्होंने नीच ख़िलजियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने को निमंत्रित किया था। एकबार फिर सैनिक जाति तुर्क अपने विरोधी ख़िलजियों से, जिनके पीछे अतीत, सामाजिक सम्मान और परम्परा न थी, लड़ने चल पड़े। तुर्क शिष्टजन ऐकान्तिकता और जातीय गौरव का एवं ख़िलजी लोग विलक्षण विदेशी तथा परिवर्त्तित धर्मी भारतीयों का प्रतिनिधित्व करते थे, जिन्होंने उस समय तक कोई निश्चित स्थान प्राप्त नहीं किया था। तुर्क एक प्रतीक थे और ख़िलजी थे एक चूल।

सुल्तान के ज्येष्ठ पुत्र ख़ानख़ाना को देहली सौंपी गयी। सेना दो भागों में विभक्त की गई। जलालुद्दीन एक भाग के नेतृत्व में कोल के मार्ग से बदायूँ की ओर बढ़ा। जहाँ छज्जू की सहायक सेनायें प्रधान सेना की प्रतीक्षा कर रही थीं। अर्कअलीख़ाँ उस समय का एक बड़ा सेनापति और योद्धा, अग्र-सेना की अध्यक्षता में अमरोहा भेजा गया। उसने छज्जू की सेना का राहब के तट पर सामना किया और जलालुद्दीन के रणकुशल योद्धाओं ने छज्जू की असंगठित सेनाओं को पूर्णतया पराजित कर दिया, जिन्होंने युद्ध क्षेत्र से भागकर पास के सुरक्षित ग्रामों में शरण ली। मुख्य विद्रोहियों को लोहे की शृंखलाओं और हथकड़ियों सहित ऊँटों पर बाँधा गया और जलालुद्दीन के पास भेज दिया गया। परन्तु सुल्तान उनको ऐसा कठोर दण्ड देने के स्थान में, जो आगे के लिये उदाहरण बनता, उनकी दुर्दशा पर अश्रुपात करने लगा और आज्ञा दी कि, "जो व्यक्ति बलबन के शासन-काल में पदाधिकारी और आदरणीय थे, उनको स्नानगृह में ले जाया जाय जहाँ उनके हाथों और मुखों को साफ किया जाय।" इसके उपरान्त उनको शाही वस्त्र पहनाया गया और "इत्र" मला गया। यह एक मूर्खता अथवा अराजनैतिक नम्रता का कार्य था; ख़िलजी सामन्तों ने सुलतान का विरोध किया, परन्तु उसने कर्मचारियों को दण्ड देना अस्वीकार कर दिया, जो राजद्रोही होते हुए भी न केवल अपने मुसलमान होने का स्वत्व अथवा सर्वाधिकार रखते थे बल्कि सुल्तान के पूर्व समय के साथी और मित्र भी थे। सुल्तान ने ख़िलजी अमीरों के शुद्ध राजनैतिक तर्कों का, दयालुता के सिद्धान्तों और न्याय के दिन का स्मरण कराते हुए,

खण्डन किया। जलालुद्दीन ने अपने पुत्रों और भतीजों से कहा कि "यदि तुम में से कोई राज-शक्ति और अनियन्त्रित राजपरिपाटी का इच्छुक है, तो मैं उसके पक्ष में अपना मुकुट देने को तैयार हूँ। वह राजा का पद ग्रहण कर निरपराधों का रक्तपात आरम्भ करे। मैं मुल्तान जाऊँगा और शेरखाँ की भाँति अपने को मुग़लों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध में संलग्न करूँगा। मैं उचित रूप से मुग़लों का प्रतिरोध करूँगा, उनको मुसलमान देश के अन्दर आने के लिये नहीं छोड़ूँगा। परन्तु मुझे राज्य की कामना नहीं, यदि यह मुसलमानों के रक्तपात के बिना नहीं रहता है। भगवान् का कोप-भाजन बनने की अपेक्षा मैं सिंहासन-त्याग श्रेष्ठ समझूँगा।" उसके शिविर के नवयुवक योद्धाओं को यह वितर्क का ढंग मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुआ और उनकी भावनाओं का उद्‌गार अहमदचप के शब्दों में हुआ—"शहंशाह! आप या तो शासन करें और राज्य की समस्त रीतियों का पूर्णतया पालन करें या मलिक के पद से सन्तुष्ट रहें जिसको कि आपने कई वर्षों तक ग्रहण किया था।" सुल्तान ने उसके तर्कों को सुनने से इन्कार कर दिया और विद्रोहियों को क्षमा दे दी। मलिक छज्जू को, जोकि गाँव के मुखिया द्वारा (जहाँ उसने शरण ली थी) बन्दी किया गया था और सुल्तान के पास भेजा गया था, उसको मुल्तान भेज दिया गया, और जलालुद्दीन ने वहाँ के राज्यपाल को आज्ञा दी कि उसके लिए जीवन की समस्त सुख-सामग्रियों का प्रवन्ध किया जावे।

तुर्की कर्मचारियों का, जिनके वंशज शहाबुद्दीन ग़ौरी के समय से साम्राज्य में शासन कर रहे थे, सुल्तान की नम्रता से लाभ उठाना स्वाभाविक ही था। उन्होंने खिलजी-क्रान्ति द्वारा छीने हुए अपने पद और शक्ति के एकाधिकार की पुनःस्थापना के लिये षड्यंत्र रचे। वे अपनी मदिरापान की सभाओं में सुल्तान के प्रति अनादरपूर्ण शब्द कहते थे और प्रायः यहाँ तक बढ़ जाते कि शक्ति द्वारा उसको राज्यच्युत करने का प्रस्ताव रखते थे। जलालुद्दीन को रात्रि-मद्यपान के उत्सवों की सूचना मिली, तो उसने कहा कि वह मद्यपों को उनके शब्दों के लिये उत्तरदायी नहीं समझता। एक दिन इस प्रकार मद्यपान-सभा मलिक ताजुद्दीन कोची के घर में जमी जो तुर्की धनवान सामन्तों में से एक था। उपस्थित सदस्य पूर्व अपराधों से भी आगे बढ़ गये। उनमें से एक

ने शेख़ी में यहाँ तक कहा कि, वह खीरा-ककड़ी की भाँति जलालुद्दीन के सिर के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा और उसके स्थान पर ताजुद्दीन कोची को सिंहासन पर बैठा देगा। जब सुल्तान को ये बातें ज्ञात हुईं तो उसने समस्त सम्बन्धित सामन्तों को राज्यभवन में बुलवाया, म्यान में से तलवार निकाली और उसे उनके सामने फैंक कर कहा, "यह तलवार पड़ी है; तुममें से जो कोई पुरुषत्व और साहस का दावा करता हो, इसको उठाये और मुझसे लड़े, जबकि मैं यहाँ बिना शस्त्र और कवच के बैठा हूँ।" अमीरों ने अपने मस्तक को झुका लिया, परन्तु उनमें से एक मलिक नुसरत सब्बाह सुल्तान के क्रोध को शान्त करने में सफल हुआ। उसने कहा, "शहंशाह स्वयं भली प्रकार जानते हैं कि पियक्कड़ मूर्खतापूर्ण बातें बकते हैं; यदि हम आप जैसे राजा की हत्या करें, जोकि हमारा अपने पुत्रों की भाँति पालन-पोषण करता है, तो आप जैसा दूसरा शासक न पा सकेंगे; और यदि इसके विपरीत हमें आप मद्यपान के कारण मृत्यु-दण्ड देते हैं, तो पुनः आपको भी ऐसे निष्कपट शुभाकांक्षी नहीं मिलेंगे।" सुल्तान हँस पड़ा और अपराधियों को क्षमा प्रदान की, परन्तु उनको अपनी-अपनी जागीरों में पृथक् रूप से रहने की आज्ञा दी।

सुल्तान की उदारता ने केवल सामन्तों को ही साहसी नहीं बनाया बल्कि चोरों, डाकुओं और लुटेरों को भी प्रोत्साहित किया। अपराधों की संख्या यह जानकर अधिक बढ़ गई कि अपराधी दण्ड से बच जाते हैं। सुल्तान अपराधियों को दण्डित करने की बजाय, बदमाशों को लखनौती भेजकर या उनसे पश्चाताप की शपथ लेकर अपने को सन्तुष्ट करता था और उनको छोड़ देता था।

६९१ हिजरी में सुल्तान एक सैनिक दस्ता लेकर रणथम्भोर की ओर गया और अर्कअलीखाँ[1] को उप-पदाधिकारी के रूप में किलगौरी में छोड़ गया। उसने मालवा के प्रदेश को लूटा, मूर्त्तियों को तोड़ा और जलाया। थोड़े विश्राम के पश्चात् सेना रणथम्भोर के दुर्ग की ओर बढ़ी। जलालुद्दीन ने एक दिन दुर्ग के निरीक्षण में बिताया और अपने शिविर में लौटकर पीछे हटने का निश्चय किया।

---

१. सुल्तान का सबसे बड़ा लड़का एक वर्ष पूर्व मर चुका था। अर्कअलीखाँ को इसलिये उप-पदाधिकारी नियुक्त किया गया।

उसने सोचा कि दुर्ग का अवरोध, दुर्ग के मूल्य की अपेक्षा अधिक प्राणों की आहुति लेगा। "मुसलमान का एक बाल मेरे लिये ऐसे दस दुर्गों से अधिक महत्वपूर्ण है," उसने अमीरों को समझाया। अहमदचप नायब बरबक ने पुनः राजकर्मचारियों के भावों का वर्णन किया। उसने विरोध किया, "यदि आप बिना रणथम्भोर विजय किये लौटते हैं तो जनता की दृष्टि में आपका आदर कम हो जावेगा। इसी चिन्ता की अग्नि मेरे हृदय में धधक रही है। आप सुल्तान महमूद[1] और सुल्तान संजर[2]—मुस्लिम धर्म के उन स्तम्भों के चरण-चिह्नों पर क्यों नहीं चलते जिन्होंने संसार को पराजित किया और उस पर सुचारु रूप से शासन भी किया?" सुल्तान हँस पड़ा और उसने उत्तर दिया, "मेरे बच्चे, संजर और महमूद के कवच ले जाने वाले, और अनुचर मुझसे सहस्र गुने उच्च और आदरणीय थे। मैं जो केवल अल्प-कालीन राजसत्ता ग्रहण करने का ढोंग किये हुए हूँ, उन कार्यों के करने का स्वप्न कैसे देख सकता हूँ, जो उन उत्तम राजाओं अथवा विजेताओं ने भली-भाँति पूर्ण किये हैं? मेरा अस्तित्व ही क्या है! मेरे राज्य की क्या शक्ति और मान है, जो मैं उन उत्तम कार्यों के लिये प्रयत्न करूँ जो संजर और महमूद ने किये हैं? मूर्ख! क्या तुम नहीं देखते कि प्रतिदिन हिन्दू मेरे महल के निकट से शंखों के स्वर फूँकते और ढोल बजाते जाते हैं। वे मेरी दृष्टि के सामने अनीश्वरवाद के नियमों का पालन करते हैं, मेरी राज्य-सत्ता और मुझसे घृणा करते हैं। यदि मैं एक सच्चा मुस्लिम राजा, धर्म का रक्षक होता, तो क्या मैं उन्हें पान खाने देता? श्वेत वस्त्र पहनने देता? और मुसलमानों के बीच में निर्भीक हृदय से शेखी मारने देता? मुझे और मेरे साम्राज्य को धिक्कार है। हर शुक्रवार को खुतबा में मेरा नाम पढ़ा जाता है, झूठे उपदेशक मुझे "धर्मरक्षक" कहते हैं, इस पर भी मेरे धर्म के शत्रु मेरी राजधानी में और मेरी आँखों के सामने आनन्द और शान से रहते हैं, मुसलमानों से अधिक सम्पत्ति और सौभाग्य के कारण उद्दण्डता से गर्व करते हैं। खुले रूप से वे बाजे बजाते हुए अपनी मूर्तियों की पूजा और नास्तिक सिद्धान्तों का पालन करते हैं। मुझे स्वयं लज्जा आती है। मैं उनको उनके आनन्द और गर्व में

---

१. गजनी साम्राज्य का शासक सुल्तान महमूद।

२. सुल्तान संजर, जो सुल्तान मलिकशाह सल्जूक का तीसरा पुत्र था।

छोड़ देता हूँ और उन थोड़े टकों पर, जो मुझे कर के रूप में मिलते हैं, सन्तोष करता हूँ ।" सुल्तान ने अपने शब्दों को नम्र किया। जैसे ही उसने यह व्याख्यान दिया, जिसे प्रोफ़ेसर हबीब सत्य और औचित्य के साथ "अशक्त और विवश धर्मोन्माद की निराश कराह" कहते हैं, सभा में एक सन्नाटा छा गया, और अहमदचप ने अपने को सुल्तान के चरणों पर डालते हुए अपनी भूल स्वीकार की।

उसी वर्ष के अन्दर दूसरी बार रणथम्भोर को विजय करने का प्रयत्न किया गया। निकटवर्ती स्थानों को लूटा गया और कुछ मन्दिरों का नाश किया गया। परन्तु दुर्ग संकट से मुक्त था।

६६१ हिजरी में हलाकू के पोते अब्दुल्लाखाँ के नेतृत्व में एक बड़ी मंगोल सेना ने भारत पर आक्रमण किया। सुल्तान अपनी सेनाओं को लेकर आया और सनाम के जिले में दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। मंगोल पराजित हुए और उन्होंने सन्धि का प्रस्ताव रखा। अब्दुल्लाखाँ अपने सैनिकों के साथ विदा हुआ। परन्तु चंगेजखाँ के पौत्र उल्गू ने सुल्तान को अपना स्वामी स्वीकार किया और भारत में बसने का निश्चय किया। मंगोलों को ज़मीनें अर्पित हुई और उनको पृथक् निवास-स्थान देहली के आस-पास, किल्गौरी, ग्यासपुर और इन्द्रप्रस्थ दिये गये। मुसलमान धर्म को स्वीकार करनेवाले मंगोल "नये मुसलमान" कहलाने लगे और उसके बाद के वर्षों में देहली के सम्राटों के लिये एक चिन्ता का कारण बने। उसी वर्ष के अन्त में सुल्तान मंडवार[1] को गया, शीघ्र ही उसको अधीन कर लिया, आसपास के स्थानों को लूटा और विजयी होकर देहली लौटा। झैन भी पुनः लूटा गया।

केवल एक उदाहरण है जिसमें सुल्तान ने अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खोया और एक राजनैतिक सन्दिग्ध व्यक्ति की हत्या की, वह सीदीमौला की घटना थी। सीदीमौला एक सन्यासी था, जिसने दूसरे देशों के प्रसिद्ध सन्यासियों के संपर्क

---

१. राजपूताने का एक महत्त्वपूर्ण पहाड़ी दुर्ग, जो संकीर्ण मार्ग के शिखर पर स्थित था। दुर्ग इतना मजबूत था कि दुर्गम अनुमानित किया जाता था।

के लिये जुर्जान को छोड़ा था। शेख़ फ़रीदउद्दीन गंजशकर का यश उसे भारत लाया। उसने उस महासंत से अजुद्यान में भेंट की। तत्पश्चात् वह देहली आया। विदा के समय शेख़ फ़रीद ने उसको सरकारी पदाधिकारियों और दरबारियों से संसर्ग न करने का उपदेश दिया, क्योंकि ऐसा संसर्ग सन्तों का विनाश करता है। बलबन के राज्यकाल में सीदीमौला देहली पहुँचा, परन्तु यह समय शान्ति और कड़े शासन का था और सीदीमौला मुख्यतः प्रसिद्ध न था। परन्तु मुईजुद्दीन कैक़ुबाद के समय की शासन-शिथिलता ने उसे तीव्र प्रकाश में आने का अवसर प्रदान किया। उसने एक शोभायमान ख़ाँनक़ा बनवाई जहाँ प्रत्येक श्रेणी के लोगों ने नित्य जाना आरम्भ कर दिया। धनी, निर्धन, नवयुवक और वृद्ध सीदीमौला को देखने आने लगे। वह भोजन और रुपये से निराश्रितों की सहायता करता था। वह मिताहारी था, उसके वस्त्र सादा थे और उसका जीवन पूर्णतया पवित्र था। परन्तु वह सामुदायिक प्रार्थनाओं में सम्मिलित नहीं होता था और किसी प्रत्यक्ष आय के साधन के बिना, वह प्रतिदिन एक हज़ार मन आटा, २० सेर सब्ज़ी, २० मन शकर, ५०० मन मांस, इनके अतिरिक्त और बहुत-सी वस्तुएँ भूखे लोगों के खिलाने में व्यय करता था। अपरिमित धनराशि दान और उपहार के रूप में बाँट दी जाती थी। मलिकों, अमीरों का ख़ाँनक़ा में जाना नियमपूर्वक था और सुल्तान का ज्येष्ठ पुत्र सीदीमौला का अनुयायी बन गया था। फ़रिश्ता के कथनानुसार, क़ाज़ी जलालुद्दीन काशानी एक उपद्रवी था, जिसने सर्वप्रथम राजनैतिक भँवर में सीदीमौला को खींचा और उसको बहकाया कि वह अपने अनुयायियों से भक्ति की शपथ प्राप्त करे, ताकि वह जलालुद्दीन को राज्य-सिंहासन से हटाने योग्य हो सके और ख़िलाफ़त ग्रहण करे। दो निर्भीक, साहसियों—एक निरञ्जन नामक कोतवाल और एक हतिया नामक अनुचर ने, जलालुद्दीन की हत्या शुक्रवार की प्रार्थना के लिए जाते समय, मार्ग में करने का वचन दिया, परन्तु षड्यन्त्र के सफल होने से पूर्व षड्यन्त्रकारियों में से एक ने सुल्तान से भेद खोल दिया। उनको गिरफ़्तार किया गया और उन्होंने अपने अपराध को अस्वीकार किया। तदुपरान्त संदिग्ध व्यक्तियों को अग्निशिला पर चलने की आज्ञा दी गई, जिसका प्रबन्ध बहादुरपुर में किया गया था। उपस्थित "धर्मशास्त्रियों" ने विरोध किया कि अग्नि

द्वारा निर्दोष सिद्ध करने की परीक्षा की आज्ञा शरीयत ने नहीं दी। सुल्तान इस विरोध पर झुक गया और अधिकांश षड्यन्त्रकारियों को देश से निर्वासित कर दिया, तथा अपराधियों को अन्य दण्ड दिया। सीदीमौला को हाथ-पैर बाँधकर राजकीय मण्डप के सामने लाया गया। सुल्तान ने उससे विवाद आरम्भ किया, परन्तु उससे दोष स्वीकार कराने में अपने को असफल पाकर "हैदरी क़लन्दरों" के समुदाय को बुलाया, जो वहाँ उपस्थित था; और कहा—"दरवेशो! देखो कैसा अपराध इस व्यक्ति ने मेरे प्रति करने के लिए सोचा है और राज्य विद्रोह की योजना बनाई है। मेरे साथ न्याय करो तथा प्रतिकार लेने के लिये तैयार हो जाओ।" एक क़लन्दर ने, जिसका नाम संजर था, सीदीमौला को छुरे से घायल किया। अर्कअलीख़ाँ ने जो वहाँ उपस्थित था, एक हाथी के महावत को संकेत किया और महावत ने अपना हाथी सीदीमौला के ऊपर हाँक दिया। जियाउद्दीन बर्नी कहता है, "मुझे स्वयं स्मरण है कि सीदीमौला की मृत्यु के दिन एक काली आँधी उठी और संसार अन्धकारमय हो गया। उत्तर भारत में उस वर्ष भयंकर अकाल पड़ा। वर्षा का अभाव और फलस्वरूप खाद्य पदार्थों की इतनी कमी हुई कि लोग यमुना में डूबने लगे और सरकार द्वारा सहायता साधनों के होते हुए भी बहुत-से मनुष्य नर-मांस-भक्षण तक पर उतर आये। तत्कालीन श्रद्धालु धर्मनिष्ठों ने अकाल का कारण सीदीमौला की मृत्यु में खोजा।"

मलिक छज्जू के परास्त होने के पश्चात्, अलाउद्दीन को कड़ा का राज्यपाल नियुक्त किया गया और शीघ्र ही असंतुष्ट आत्माओं ने उसे घेर लिया, जिन्होंने छज्जू के विद्रोह के लिए उसे उत्साहित किया। कड़ा शीघ्र ही षड्यन्त्र और घृणा का एक केन्द्र बन गया। सुल्तान का अति कृपा-पात्र होने पर भी अलाउद्दीन स्वयं अपनी हठी पत्नी और सास के घृणित व्यवहार से बहुत दुःखी था। कड़ा के सामन्तों ने, जो सदैव के हठी और असन्धेय तथा दूसरों की विपत्ति से लाभ उठानेवाले थे, उसकी आँखों के सामने देहली के सिंहासन की झलक दिखाकर, अलाउद्दीन को सब्ज़बाग़ दिखाना शुरू कर दिया। यदि वह एक निपुण सेना एकत्र कर पाता, तो वह नवयुवक, वीर और महत्त्वाकांक्षी, अपने लिये एक राज्य प्राप्त कर सकता था। परन्तु

सेना के लिये रुपया चाहिये था। महत्वाकांक्षा और आवश्यकता दोनों ने दक्षिण की ओर संकेत किया, जहाँ धन-पूर्ण मरहठा राज्य था। इस प्रकार देहली के सिंहासन की प्राप्ति के लिये आकांक्षा से प्रोत्साहित होकर, बढ़ती हुई राजनैतिक हलचल द्वारा प्रदत्त-सी असंख्य संभावनाओं से प्रेरित होकर और पति-पत्नी के बीच सदैव बढ़ती हुई खाई से उद्भूत निराशा से ताड़ित अलाउद्दीन एक भाग्यशाली सैनिक की भाँति दक्षिण में एक स्वतन्त्र प्रदेश निर्माण करने के लिये या इसके विपरीत देहली के सिंहासन की प्राप्ति के लिये अधिक मात्रा में धन-संचय के उपाय सोचने लगा।

१२६३ ई० में अलाउद्दीन ने सुल्तान से भिलसा पर आक्रमण की अनुमति के लिये प्रार्थना की। अनुमति मिल गई और धावा करते समय अलाउद्दीन ने पहाड़ी के दूसरी ओर बसे हुए मरहठा राज्य के बारे में, जिसकी राजधानी देवगिरि थी, पूछताछ आरम्भ की। भिलसा के विनाश के पश्चात्, वह अधिक लूट के माल और कुछ काँसे की मूर्त्तियों को, साथ लेकर वापस लौटा, जो सुल्तान को उपहार के रूप में भेजी गईं। वृद्ध सुल्तान ने उसको अर्ज़-ए-ममालिक नियुक्त किया और कड़ा की जागीर के अतिरिक्त अवध का प्रदेश सेवाओं की स्वीकृति के उपलक्ष्य में उसको प्रदान किया। परन्तु अलाउद्दीन में कृतज्ञता की भावना जागृत होने के बजाय, इन अतिकृपाओं ने केवल उसकी आकांक्षा को उत्तेजित किया और उसके पाप-संकल्प को दृढ़ किया।

सुल्तान की वृद्धावस्था का लाभ उठाते हुए, अलाउद्दीन ने अब चन्दारी पर आक्रमण करने की आज्ञा इस बहाने माँगी कि चन्दारी का राजा अपने धन के कारण अभिमानी हो गया है, और उसने देहली सरकार की अधीनता अस्वीकार करदी है। आज्ञा दे दी गई। अलाउद्दीन ने शीघ्र ही चार हजार घुड़सवारों और दो हजार पैदल सिपाहियों की सेना बनाई। उसने अपने विश्वासी मित्र और उपदेशक अलाउलमुल्क[१] को कड़ा का प्रतिनिधि बनाकर अपनी स्वप्न-भूमि दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसकी गति-विधि के समस्त समाचार

---

१. तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही के लेखक का चचा।

सावधानी से गुप्त रखे गये। वह एलिचपुर पहुँचा, जहाँ कुछ दिनों के लिये ठहरा और बात फैलादी कि वह दक्षिण की ओर अपने भाग्य की परीक्षा करने जा रहा है। अब वह लजौरा[1] घाटी की ओर बढ़ा। अदृष्ट ने इस उन्माद और अभिमान का साथ दिया। दुर्ग अरक्षित था, क्योंकि देवगिरि की सेना का एक भाग, देवगिरि के राजा रामदेव के पुत्र शंकरदेव के साथ दक्षिण में होयसल के राजा के विरुद्ध गया हुआ था।

जब रामदेव[2] को मुसलमानों के आगमन का समाचार मिला तो उसने यथासम्भव सेना एकत्र करके उसे अपने रानाओं में से एक के नेतृत्व में लजौरा घाटी भेजा। अलाउद्दीन ने उन्हें पराजित और तितर-बितर कर दिया, और देवगिरि की ओर बढ़ा। राजा ने अपने को दुर्ग के अन्दर बन्द कर लिया और शीघ्र अपने पुत्र द्वारा सहायता की आशा में विरोध का निश्चय किया। परन्तु अपर्याप्त उपकरणों के कारण दुर्ग-रक्षक आकस्मिक संकट के लिये तैयार न थे। राजा के पदाधिकारी घबराहट और शीघ्रता में, दुर्ग में अन्न के स्थान में कुछ नमक के बोरे, जो हाल ही में एक व्यापारी द्वारा कोंकण से लाये गये थे, ले गये, जिससे परिस्थिति और भी शोचनीय हो गई। अलाउद्दीन ने अफ़वाह फैला दी कि उसकी सेना केवल पीछे आने वाली मुख्य २० हजार अश्वारोहियों की सेना का अग्रगामी रक्षक दल है। इस षड्यंत्र का इच्छित प्रभाव हुआ, और राजा ने किसी रूप में सहायता न पाने की निराशा में तथा भुखमरी अनिवार्य समझकर, सन्धि की वार्ता आरम्भ करने में नीतिज्ञता समझी। पराधीनता सर्वनाश से अच्छी है। अलाउद्दीन ने भी अपनी भयानक परिस्थिति का अनुभव किया, जिसमें उसने अपने आप को अदूरदर्शी अभियान से शत्रुओं के देश में अपर्याप्त सेना के साथ डाल लिया था, और उसने वापसी में खानदेश, मालवा, तथा गुडवाना के हिन्दू राजाओं द्वारा रास्ता रोके जाने की सम्भावना का अनुभव किया। परन्तु रामदेव की शीघ्र सन्धि की शर्तों के तय करने की दृष्टि ने, उसको इसी परिणाम पर पहुँचाया कि दुर्ग-रक्षकों की अवस्था अच्छी नहीं है। उसने

---

१. अन्यथा लासौर के रूप में जाना जाता था जो देवगिरि से लगभग १२ मील दूर था।

२. यादव राजकुमार रामचन्द्र, जो १२७१ में देवगिरि का राजा हुआ था।

अर्द्धमास में देवगिरि[1] से चले जाने का वचन दिया, यदि रामदेव उसको मुक्ति के उपलक्ष में ५० मन सोना, ६० मन मोती और दूसरी बहुमूल्य वस्तुएँ, ४० हाथी, कई सहस्र घोड़े, लूट के माल के अतिरिक्त, जोकि उसने पूर्व नगरों में वसूल कर लिया था, क्षतिपूर्ति के रूप में देने का वचन दे। राजा के पास पराधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय न था। परन्तु ठीक उसी समय पर जब सन्धि तै हुई, समाचार मिला कि शंकरदेव नगर से कुछ मील दूर एक बड़ी सेना के साथ पहुँच गया है जिसकी सेना का अन्तर अलाउद्दीन की सेना से एक और दो का था। पुत्र को सन्धि की सूचना दी गई और पिता ने आज्ञा दी कि वह तुर्कों पर आक्रमण न करे। परन्तु उसने आज्ञा-पालन करना अस्वीकार किया और धमकी दी कि यदि अलाउद्दीन ने लूटा हुआ समस्त माल वापस न किया, तो मुसलमानी सेना का सर्वनाश कर दिया जायगा। परन्तु अलाउद्दीन लूट के माल को, जो उसने जीवन की बाज़ी लगाकर प्राप्त किया था, वापस करने को तैयार न था, अतः नवयुवक[2] राजकुमार से युद्ध की तैयारी करने लगा। वह एक हज़ार घुड़सवारों को मलिक नुसरत जलेसरी के नेतृत्व में दुर्ग को देखने के लिये छोड़कर शेष से शंकर के मुक़ाबले को चला। अलाउद्दीन की सेना बहुत कम थी और उसकी हार हो जाती यदि नुसरत अपने एक हज़ार व्यक्तियों के साथ क़िले को छोड़कर अपने स्वामी की सहायता के लिये ऐन मौक़े पर न आ गया होता। हिन्दुओं ने ग़लती से उनको मुसलमानों की सेना का मुख्य

---

१. देवगिरि की स्थापना भिल लामा, एक यादव राजकुमार ने ११८७ में की थी। यह एक धनवान और शक्तिशाली एवं सभ्य राज्य था। गढ़ एक अलग पहाड़ी पर ६४० फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। पहाड़ी नुकीली और चट्टानों के ढलान के अतिरिक्त दृढ़ दीवारों, गरगजों, खाइयों से सुरक्षित थी। वास्तव में यह तीन स्पष्ट दुर्ग, एक-दूसरे के अन्तर्गत थे और उसके नीचे नगर था जो बड़े व्यापार का केन्द्र था। एस० डी० बी, गिरिबिल, दक्षिण का इतिहास भाग १, पृष्ठ २।

२. अलाउद्दीन ने कठिन परिस्थितियों में अत्यन्त आत्मविश्वास और प्रतिभा का प्रदर्शन किया। शंकरराव के दूतों का अपमान सर्व सामान्य के सामने किया था, उनकी आकृतियों को काला किया गया और वह हिन्दू सेना में भेज दिये गये। वास्तव में यह भारत के इतिहास में एक अत्यन्त निर्लज्ज अथवा साहसी तथा अलाउद्दीन के सांग्रामिक पराक्रमों में एक अत्यन्त सफल चढ़ाई थी।

भाग समझा, जिसके आगमन का उनको प्रतिक्षण भय था। वे तितर-बितर होकर भाग गये। अलाउद्दीन ने पुनः नगर में प्रवेश किया और क़िलेबन्दी जारी रखी। रामदेव ने पुनः सन्धि की वार्ता आरम्भ करदी। अलाउद्दीन ने उस पर विश्वासघात का अभियोग लगाया और कड़ी शर्त्तों पर ज़ोर दिया। फ़रिश्ता के कथनानुसार, "उसने राजा से ६० मन सोना, ७ मन मोती, २ मन अन्य मणियाँ और एक हज़ार[1] मन चाँदी ली। वार्षिक शुल्क के रूप में एलिचपुर की मालगुज़ारी बलपूर्वक प्राप्त की।" लूट के माल के भार के साथ अलाउद्दीन ने कड़ा के लिये प्रस्थान किया। उसने दक्षिण में मुसलमानी सत्ता की नींव रखी और धन प्राप्त किया, जिसकी आवश्यकता उसके भविष्य के पराक्रम के लिये थी।

जब अलाउद्दीन दक्षिण में युद्ध कर रहा था, जलालुद्दीन ने ग्वालियर की ओर कूच किया, जहाँ उसने सुना कि अलाउद्दीन अश्रुतपूर्व लूट के माल और अधिक संख्या में हाथियों के साथ आरहा था। सुल्तान को अलाउद्दीन के कड़ा की वापसी का विरोध करने की सलाह दी गई, "ऐसा न हो कि वह अपने हाथियों और धन से इतना उन्मत्त हो जाये कि वह अपनी वास्तविकता को भूल जावे" परन्तु, अपने हृदय की सरलता से उसने अपने भतीजे के विरुद्ध बुरी अफ़वाओं पर विश्वास न किया। कुछ ही दिनों के पश्चात् अलाउद्दीन के सुरक्षित कड़ा पहुँचने की सूचना मिली। अलाउद्दीन का नम्रता-पूर्ण एक पत्र दरबार में प्राप्त हुआ, उसने सुल्तान से बिना पूर्व-स्वीकृति के आक्रमण के लिए जाने की क्षमा-याचना की और दरबार में हाजिर होने की अनुमति की प्रार्थना की, जिससे वह लूट का माल सुल्तान के चरणों में प्रस्तुत कर सके। परन्तु वह कार्यकुशल सेनापति लखनौती पर भी आक्रमण करने की योजना बना रहा था और उसने अपने सेनापति ज़फ़रख़ाँ को नदी पार करने के लिये नावों को एकत्र करने के लिये भेजा था। बंगाल जाने से पूर्व उसने यह दाव लगाने का निश्चय किया; सुल्तान को कड़ा आने का प्रलोभन दिया।

---

१. अलबरूनी भारत और अरब के तोलों की उपमाजनक सूची देता है। भारत का एक मन वस्तु के अनुसार भिन्न था। अन्न का एक मन क़रीब १३ सेर के और एक मन सोना १/३ या १/५ अन्न के मन का था।

देवगिरि की सम्पत्ति की प्राप्ति की इच्छा में अन्धे सुल्तान को, अलाउद्दीन का छोटा भाई अल्मास बेग जोकि दरबार में उपस्थित रहता था, यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि अलाउद्दीन के अपने प्राण संकट में थे और जब तक जलालुद्दीन एक स्नेही चचा के समान शीघ्र सेना रहित होकर कड़ा न जावेगा, अलाउद्दीन या तो आत्म-हत्या कर लेगा या लखनौती को निकल जावेगा और बहुमूल्य सम्पत्ति हाथ से निकल जावेगी। निष्कपट वृद्ध सुल्तान जाल में फाँस लिया गया। अल्मास बेग को उसके प्रति सुल्तान के स्नेह का विश्वास दिलाने के लिये आगे भेजा गया; जबकि अहमदचप बाढ़ और मूसलाधार वर्षा के प्रदेशों से धीरे-धीरे सेना को लेकर आगे बढ़ने का परिश्रम कर रहा था, सुल्तान शीघ्रता से नावों द्वारा कड़ा पहुँच गया। गंगा और यमुना के संगम पर अल्मास बेग उसकी अगवानी के लिये आया, सुल्तान को एक हज़ार शस्त्र सुसज्जित व्यक्तियों को पीछे छोड़ने पर, जिन्हें वह अपने साथ नावों में लाया था, सहमत किया। जब सुल्तान नदी के तट पर उतरा, अलाउद्दीन पूर्ण विनम्रता से आगे आया और अपने को चचा के चरणों पर डाल दिया। सुल्तान ने उसे ऊपर उठाया, स्नेह से उसे सीने से लगाया, उसके कपोलों का चुम्बन किया और कहा, "मैंने तुम्हारा पालन-पोषण बाल्यकाल से किया और अपने पुत्रों से अधिक तुमसे प्रेम किया है, तुम मुझसे क्यों डरते हो? तुम्हारे हृदय में मेरे भय ने मेरे रक्त को जल में परिवर्तित कर दिया है।" सुल्तान उसके हाथ को पकड़े नाव की ओर बढ़ रहा था, उस समय मलिक नुसरतखाँ के संकेत पर समाना के मुहम्मद सलीम और इख्तयारुद्दीन ने सुल्तान को घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया। एक प्रत्यक्ष साक्षी के अनुसार जब उसका सिर काटा[१] जा रहा था तब उसने कल्मा-ए-शहादत पढ़ा। पूज्य सुल्तान का सिर शीघ्र ही भाले पर टाँगा गया, शिविरों में घुमाया गया और उसके पश्चात् अवध भेज दिया गया। "राजछत्र अलाउद्दीन के सिर पर लगाया गया, जोकि १६ रमज़ान ६९५ हिजरी को राजा घोषित किया

---

१. अलाउद्दीन राज्याभिषेक के पूर्व अली के नाम से प्रसिद्ध था—तारीखे हक्की के अनुसार जलालुद्दीन जब असर की नुमाज़ के बाद कुरान पढ़ रहा था, तब उसका सिर शरीर से पृथक् किया गया।

गया।" "इस प्रकार एक मुसलमान और सुन्नी सुल्तान का अफ़्तार[1] के समय अपने शत्रुओं के बीच वध किया गया।"

"अधिकांश चरित्रों का आरम्भ पूर्ण सन्तुलन से होता है, मध्य अनुभव की प्रवृत्ति से विक्षिप्त और अन्त पूर्ण लय-भंग में हो जाता है।" ऐसा ही चरित्र जलालुद्दीन का था। हम उसके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानते। वह ख़िलजी कुटुम्ब की सन्तान था, जिसके सदस्य अपनी वीरता और शूरता में प्रसिद्ध थे और उसने अपने को मंगोलों के विरुद्ध एक सफल योद्धा सिद्ध किया था। मुईज़ुद्दीन कैक़ुबाद के शासनकाल में वह समाना का राज्यपाल और दरबार का सरजानदार (प्राण-रक्षा सेना का नायब) था, जिसने बाद में उसे अर्ज़-ए-मुमालिक नियुक्त किया और बदायूँ की जागीर दी थी। ६८९ हिजरी की राजनैतिक उथल-पुथल ने भारत की राजसत्ता उसके हाथों में ७० वर्ष की अवस्था में सौंपी। सिंहासन प्राप्त कर चुकने के पश्चात् उसमें न तो महत्वाकांक्षा और प्रतियोगिता थी और न शक्ति की प्रचुरता ही, जो बड़े व्यक्तियों को प्रसिद्ध करती है। केवल एक उदाहरण, जिसमें उसने सुप्त-तेज और शक्ति के प्रेम में अपना प्रदर्शन किया, क्रोध का वह प्राणनाशक विस्फोट था जिसका मूल्य सीदीमौला के प्राण थे और जो न्याय सम्बन्धी हत्या के नाट्य आवरण के आधार पर भी नहीं हुआ था।

प्रारम्भ से ही उसके अन्तर में गहन विरोध था। वह अपनी भावना और वास्तविकता, कर्त्तव्य और शक्ति, संयत और कर्म के पारस्परिक अन्तर्द्वन्द्व को सन्तुष्ट न कर सका। परन्तु सार्वजनिक जनप्रवाद उसे कैक़ुबाद और उसके शिशु-पुत्र शम्सुद्दीन की हत्या का उत्तरदायी समझते थे। तथापि जलालुद्दीन कभी किसी मुसलमान के रक्तपात न करने का गर्व करता था।

जलालुद्दीन में बाबर और तैमूर की वंश-परम्परा का गौरव न था। वह इस दुखदायी तथ्य से सचेत था कि उसने पैतृक गुणों के रूप में राजसत्ता का अहंकार और अभिमान नहीं पाया था। जब उसने सर्वप्रथम अपने

१. मुसलमानों का व्रत खोलने का समय।

सिंहासनारोहण के पश्चात् देहली और बलबन के राजमहलों को देखा, तो वह अपने गौरव के बोझ से ही दब गया था और अपने आप को विलक्षण अनुचित स्थान में अनुभव करने लगा। वह दयनीय भाषण जो उसने एक सामन्त के सामने दिया, एक ऐसे व्यक्ति की पीड़ा थी, जिसको उसकी आत्मा ने कातर बना दिया था। पुराने राजमहल ने, जहाँ वह बहुधा सुल्तान बलबन के सामने हाथ बाँधे एक दीन दास के रूप में खड़ा रहता था, उस मार्ग ने, जिसके द्वारा उसने राज्य प्राप्त किया, एक रक्त-पूर्ण चित्र उसके मस्तिष्क में खींच दिया था। भाषण ने सैनिक कर्मचारियों की दृष्टि में उसका आदर कम कर दिया था, चाहे उसने राजधानी के वृद्ध सज्जनों में स्नेह और प्रेम-भाव पैदा कर दिया हो।

जलालुद्दीन एक सभ्य नृपति था। वह स्वयं एक कवि था। उसने कला, विद्या और ललित कलाओं को प्रोत्साहित किया। कविता, संगीत, इतिहास की उन्नति उसके दरबार में हुई। अमीर ख़ुसरो को, जिसको बर्नी प्राचीन और "वर्तमान" कवियों में सर्वश्रेष्ठ समझता है, "क़ुरान का रक्षक" नियुक्त किया गया था। अमीर हसन प्रसिद्ध कवि और सन्त तथा दरबार में अपूर्व बुद्धि का व्यक्ति था। इनके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तियों; जैसे ताजुद्दीन ईराक़ी, मोयदि दीवाना, अमीर अर्सलान कुली, को सुल्तान की सहायता और संरक्षण प्राप्त थे। सुल्तान उच्च संगति से प्रेम करता था और बहुधा उत्सवात्मक सभाएँ निमंत्रित करता था, जहाँ उसके पुराने मित्र एकत्र होते, मद्यपान करते, शतरंज खेलते, अथवा थकान के क्षणों को संगीत अथवा नृत्य में शान्तिपूर्वक व्यतीत करते थे।

जलालुद्दीन का शासन नम्र एवं दयापूर्ण था और प्रजा सुखी व सौभाग्यशाली थी, अधिकारियों ने जनता के साथ क्रूर व्यवहार करने का कभी साहस नहीं किया। शरियत के नियमों का पालन किया जाता था। सुल्तान प्रार्थना नियमपूर्वक करता और प्रतिदिन क़ुरान का एक सिपारा पढ़ता था। वह कृपालु, उदार, क्षमा देनेवाला था, उसने कभी किसी को कार्य या शब्द से चोट नहीं पहुँचाई, और न कभी अपनी किसी प्रजा से निष्ठुरता का व्यवहार

किया, जबकि सीदीमौला को अपवाद समझा जावे। उसका चरित्र प्रतिहिंसा के रंग से मुक्त था। जब जलालुद्दीन समाना का राज्यपाल था, मौलाना सिराज-उद्दीन सबी ने, जो एक कवि था, अपनी "खिलजीनामा" नाम की कविता में उसका उपहास किया था। जलालुद्दीन के राज्याभिषेक के पश्चात् सुल्तान की प्रतिहिंसा के भय से वह, दरबार में अपराध स्वीकृति के लिये अपराधी[1] के रूप में हाजिर हुआ। जलालुद्दीन ने उसे क्षमा प्रदान की और पेंशन और एक उपहार के साथ विदा किया। अभिमानी होते हुए भी वह निष्कपट और उच्च विचार का था। एक समय में उसने "अल्-मुजाहिदे-फी सबीलिल्लाह" की पदवी धारण करने की सोची और अपनी पत्नी से कहा कि क़ाज़ी तथा धर्मशास्त्रियों से प्रस्ताव करे कि वे उससे पदवी-ग्रहण करने की प्रार्थना करें। क़ाज़ियों ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उससे शुक्रवार के उपदेश में पदवी का प्रयोग करने की आज्ञा माँगी। परन्तु सदैव का दुर्बल और अस्थिर सुल्तान धार्मिक भय की प्रचण्डता में बह गया और अपनी पदवी-ग्रहण करने की अयोग्यता स्वीकार करली। उसने उनसे स्पष्ट कहा, "मैं अपने समस्त जीवन में कोई ऐसी घटना स्मरण नहीं कर सकता, जब पूर्ण रूप से भगवान् के निमित्त मैंने एक भी युद्ध किया हो और अल्लाह के मार्ग पर 'तलवार खींची' हो।"

जलालुद्दीन के विरुद्ध सार्वलौकिक अभियोग यह था कि उसमें राजत्व की आवश्यक विशेषताओं का अभाव था। भय और राज्य-प्रताप राजा में होना ही चाहिये; वह निर्बाध शाही व्यय के योग्य न था जोकि उसकी प्रजा को आश्चर्य से मुग्ध करता। और न भय और प्रभुत्व ही उसमें था, जो मनुष्यों में शासन के लिये एक आवश्यक गुण है। स्वर्ण और हाथियों की लालसा के कारण उसकी दुःखद मृत्यु हुई और स्वर्ण की अभिलाषा उसको सिर के बल मृत्यु के मुँह में ले गयी।

यदि एक बड़े व्यक्ति की प्रथम परीक्षा उसकी नम्रता हो, तो जलालुद्दीन निश्चय ही एक महापुरुष था। परन्तु ऐसा राजा उस संकट के समय में अयोग्य

१. उस समय की रीति के अनुसार एक अपराधी, जो न्याय चाहता था अपनी पगड़ी को गर्दन से लपेट कर दरबार में उपस्थित होता था और पगड़ी के छोर में एक वजनदार वस्तु बाँधी जाती थी।

24451
7.5.68

था। २०वीं शताब्दी में वह अपनी शैया पर मरा होता, और उसने "उत्तम जलालुद्दीन" की पदवी प्राप्त की होती। १३वीं शताब्दी में उसकी कलंकपूर्ण हत्या हुई और वह शीघ्र विस्मृत हो गया। दयालुता उसका अन्तिम गुण था जिसको उस समय के लोग पसन्द कर सकते थे।

जलालुद्दीन की निर्बल और भीरु नीति न तो उसके लिये जनता का स्नेह प्राप्त कर सकी और न सैनिकों का आदर ही। उसके अनुयायी असन्तोष प्रगट करते थे और कहते थे, "यह व्यक्ति राजा होने के योग्य नहीं है।" वे उत्तेजना चाहते थे। उनके कानों को बिगुल की ध्वनि की, उनकी आँखों को आदमियों के खून में छटपटाते हुए देखने की, उनके कानों को विलाप और घायलों की चिल्लाहट सुनने की तृष्णा थी। अलाउद्दीन उनके लिए अभीष्ट मनुष्य था और धीरे-धीरे सब उसके साथी बन गये। यह रक्तहीन क्रान्ति थी, क्योंकि न तो युद्ध हुआ और न मार-काट हुई। वृद्ध सुल्तान और उसके पुत्रों की मृत्यु ने समस्त बाधाऐं हटा दीं और अलाउद्दीन ने, जिसने अपनी सम्पत्ति एवं जीवन की बाजी लगायी थी, सिंहासन के लिये प्रस्थान किया। यदि एक मनुष्य कीड़ों की भाँति रेंगता है, कुचल जाता है, तो उसे रोना नहीं चाहिये। हम अलाउद्दीन के कार्य से भयभीत भले ही हो सकते हैं, परन्तु निर्बल इच्छा-शक्तिवाले सुल्तान के भाग्य पर अल्प मात्रा में भी दया अनुभव नहीं होती। उसकी थोड़ी-सी वीरता, उसकी अधिक नम्रता से उसके लिये अधिक उपयोगी होती। जलालुद्दीन अद्भुत रूप से अनुचित एवं दुःखपूर्ण वास्तविकता से सचेत था। बर्नी का दुःखपूर्ण वर्णन इस मनुष्य के लिए श्रेष्ठ स्मरण-लेख है—"इस प्रकार एक ऐसा सुल्तान—एक सुन्नी, अफ़तार के समय अपने शत्रुओं के समूह में शहीद किया गया।"

नामानुक्रमणिका

अ — पृष्ठ

अर्क़ अली खाँ : ४

अला उद्दीन, ... ३, ६, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २२

अहमद चप ४, ५, ८, १०, ११, १८

अमरोहा ७

अबदुल्ला खाँ, ... ११

अजुधान, ... १२

अवध १४

अमीर हसन २०

अमीर ख़ुसरो २०

अमीर अर्सलान क़ुली ... २०

अला–उल्मुल्क १४

इ

इल्मास बेग ३, ६, १८

इन्द्र प्रस्थ ११

इख़तयार हुद १८

उ

उल्गू ११

ए

एलिचपुर १५

ऐ

ऐत्मार कच्छन्न ५

ऐत्मार सुरख़ा ५

क

कैक़ुबाद (मुईज़ुद्दीन) ... १, १२, १९

किलगौरी २, ९, ११

कद्र खाँ ३

कड़ा ६, १३, १४, १८

ख

ख़्वाजा ख़ातिर ३

खानदेश १५

ग — पृष्ठ

ग़्यासपुर ११
गुडवाना १५
ग्वालियर १७

च

चंगेज़ खाँ ११
चंदारी १४

ज

जलालुद्दीन १, २, ३, ५, ७, ८, १७, १८, १९, २०, २१, २२
जुर्जान १२

झ

झैन ११

त

ताजुद्दीन कोची ८, ९
ताजुद्दीन इराक़ी २०

द

देहली, ... १, ३, ७, ११, १२, १३, १४
देवगिरि १४, १५, १६, १८

न

नुसरत सब्बाह ९
निरञ्जन १२

प

प्रोफेसर हबीब ११

फ

फ़खरुद्दीन ३
फ़रीदुद्दीन गंजशकर १२

ब

बर्नी (ज्याउद्दीन) १, ३, १३
बलबन २, ४, ५, ६, ७, १२
बहादुरपुर १२
बदायूं १९

म पृष्ठ

भिलसा १४
मोयदि दीवाना २०
मुहम्मद सलीम १८
मलिक नुसरत ख़ाँ १८
मलिक छज्जू १, ६, ७, १३
मुल्तान ८
मालवा ९, १५
मौलाना सिराजुद्दीन २१

य

यगरीश ख़ाँ ३

र

राहब ७
रणथम्भौर ९, ११
रामदेव १५, १६

ल

लाजौरा १५
लखनौती १८

श

शेर ख़ाँ ८
शहाबुद्दीन गौरी ८
शंकर देव १५, १६
शम्सुद्दीन १९

स

संजर १३
समाना १९
सुल्तान मुहम्मद १०
सुल्तान संजर १०
सनाम ११
सीदी मौला ११, १२, १३, १९, २०

ह

हातिमख़ाँ ११
हलाकू ११
हतिया १२

24452
24451
7.5.68